विज्ञान बनाम धर्मावरण व अज्ञान!

दिलीप सिंह तंवर

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा अभी हाल में कक्षा एक से आठवीं तक की नई पुस्तकें बना कर प्रकाशित की गईं हैं। यह पिछले कुछ वर्षों मे तीसरी बार है जब राजस्थान में नई पुस्तकें बना कर स्कूलों में लागू की गईं हैं। पहले राजस्थान राज्य की पुस्तकें, फिर एनसीईआरटी की पुस्तकें इसके बाद 'आईसीआईसीआई फाउंडेशन फॉर इन्क्लूसिव ग्रोथ' की मदद से एसआइईआरटी द्वार बनाई गई पुस्तकें और अब फिर से नई पुस्तकें। सवाल उठता है कि आखिर इतने कम समय मे पुस्तकों में इतनी बार बदलाव के मायने क्या हैं? क्यों बार-बार इन पुस्तकों को बदला जा रहा है? क्या समाज में इन बदलावों को लेकर आम लोगों की कोई राय है, इस पर मैंने कुछ लोगों से अलग-अलग मौकों पर इसकी जरूरत और औचित्य पर बात की। जिसमें शिक्षक भी शामिल थे। उनकी प्रतिक्रियाएं कुछ इस तरह थीं-

''अरे, अभी तो पुस्तकें बदली थीं, फिर से नई बनाने की जरूरत क्या पड़ गई। सब पैसे खाने के खेल हैं। मंत्री को मोटी रकम मिली होगी।''

''ये तो होना ही था भाई साहब, जब भी सरकार बदलती है तो किताबें भी बदलती हैं। ये तो हर सरकार करती है। यह सरकार भी किताबों में अपना एजेंडा रखेगी।''

''नई किताबें बनाने से क्या होगा, मास्टर तो स्कूल में पढ़ाते ही नहीं हैं। कितनी भी किताबें बना लो जब तक स्कूल में पढ़ाई नहीं होगी तब तक कुछ नहीं हो सकता।''

''यह... (प्रधानमंत्री जी का नाम) युग चल रहा है। तो किताबें भी ऐसी होनी चाहिए जो हमारे बच्चों को महान संस्कृति से परिचित कराएं, उन्हें संस्कारवान बनाएं। आप देख रहे हो आजकल के बच्चे कैसे होते जा रहे हैं। इतिहास का कोई ज्ञान ही नहीं है उन्हें। पश्चिम का असर खत्म करना है तो यह जरूरी है। अजी साहब अकबर को महान पढ़ाते आ रहे हैं अब तक। राणा प्रताप जी को भूलते जा रहे हैं।

इन लोगों से की गई बातचीत में एक बात सामने आई कि इन्हें यह पता ही नहीं था कि सरकार ने कोई नई किताबें बनाई भी हैं और न ही इन्होंने ये किताबें देखी थीं, लेकिन जब मैंने उनसे इस पर राय जाननी चाही तो उनकी कोई न कोई राय जरूर थी। इसका आशय है कि आमजन इसका संबंध किसी न किसी रूप मे सरकारों के इरादों से जोड़कर देख पा रहें हैं। किसी भी लोकतांत्रिक समाज के लिए अच्छी बात है कि आम लोग सरकारों द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों पर अपनी राय रखते हैं और उसके पीछे के कारणों की अपनी तरह से व्याख्या भी करते हैं।

अब, अगर आप इन आमजनों की राय पर ध्यान दें तो कोई भी राय किताबों की प्रकृती या गुणवत्ता के बारे में नहीं है बल्कि सरकार के द्वारा किताब बनाने के निर्णय के बारे मे हैं। सिर्फ एक व्यक्ति की राय वर्तमान सरकार के संदर्भ में गुणवत्ता के संभावित मानदण्डों की ओर इशारा जरूर करती है कि इस सरकार के लिए गुणवात्ता के अनुसार अच्छी किताबें कैसी होनी चाहिए।

यदि आमजन को इन पुस्तकों के बनाने के निर्णय, निर्णय के कारणों और इनकी गुणवत्ता को जानने के मौके मिले होते तो संभवतया वे ज्यादा बेहतर राय रखते कि आखिर इन किताबों के बनाए जाने का निर्णय सही था या गलत, किताबें बच्चों व समाज के लिए बेहतर हैं या नहीं। और इस आधार पर वे सरकार का मूल्यांकन भी कर पाते। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं।

शिक्षा किसी भी समाज की दिशा व दशा को सीधे तौर पर प्रभावित करती है और किताबें शिक्षा का (कम से कम हमारे देश में) एक मूलभूत औजार हैं। तो जरूरी है कि किताबें बनाने से पूर्व उस पर पर समाज में पर्याप्त बहस हो व बनाने के बाद उनकी समाज में व्यापक समीक्षा हो।

चूंकि, न तो ऐसा किया गया और न इन सवालों के जवाब ही मिले। इसलिए अब जरा इन किताबों पर नजर डाल कर देखते हैं, क्या वे इन सवालों के कोई जवाब देती हैं या उनसे इन सवालों के जवाब ढूंढे जा सकते हैं? और देखते हैं कि क्या वहां इनके औचित्य व जरूरत के बारे में कुछ कहा गया है?

चित्र-1

इन किताबों के 'प्राक्कथन' (देखें चित्र-1) की पहली दो पंक्तियों में दो महत्वपूर्ण बातें कही गईं हैं। पहली, 'बदली हुई परिस्थितियां' जिनकी वजह से शिक्षा में परिवर्तन की जरूरत हुई तथा दूसरी, शिक्षा में यह परिवर्तन 'विकास की गति' को तेज करेगा। यहां एक बात तो स्पष्ट होती है कि किताबें एक राजनैतिक औजार हैं क्योंकि इनका संबंध विकास से है। लेकिन प्राक्कथन जो बात नहीं बताता वह है, पहली कि वे बदली हुई परिस्थितियां कौनसी हैं? आखिर वह क्या है जो बदल चुका है? और दूसरी कि विकास के मायने और इसकी दिशा क्या है? तीसरी, शिक्षा को प्रभावशाली बनाने का मतलब क्या है? और किस पर प्रभाव?

कहीं ये बदली हुई परिस्थितियां बीजेपी की सरकार का बनना तो नहीं! पहले एक पार्टी की सत्ता थी, अब दूसरी पार्टी सत्ता में आई है। तो क्या सरकार का बदलना इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है कि किताबें बदलना जरूरी हो जाता है। यदि यह बात सही है तो फिर उस व्यक्ति की राय पर फिर से नजर डालिए जिसमें उसने एक युग का जिक्र किया है, तो आपको विकास के मायने, उसकी दिशा और 'प्रभावशाली बनाने' का मतलब साफ दिखाई दे जाएगा।

यहां यह साफ हो चुका है कि शिक्षा और शिक्षा से जुड़े मसले जैसे कि किताबों का बनना राजनीतिक विषय हैं और इनका संबंध विकास (की दिशा व दशा) से है तो फिर इनके संदर्भ में किए जाने वाले परिवर्तन बेहद महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनका सीधा संबंध समाज की दशा व दिशा से होता है, लोगों की जिंदगी से जुड़ा होता है। ऐसे में इन परिवर्तनों के बारे में न सिर्फ जन-साधारण की राय जानना बल्कि उन पर व्यापक व तार्किक बहस का होना लाजमी हो जाता है। ताकि जन-साधारण भी यह जान सकें कि आखिर राजनैतिक सत्ताएं शिक्षा व पुस्तकों में किस तरह का परिवर्तन करने जा रहीं हैं? और इस परिवर्तन के द्वारा किस तरह के और किसके विकास की कोशिश कर रही हैं? उस विकास की दिशा क्या होने वाली है? उसका हमारे समाज और जीवन पर क्या असर होने वाला है? इत्यादि। जैसा कि अन्य विकसित देशों मे होता भी है और एनसीएफ 2005 के समय हमारे यहां भी किया गया था। लेकिन जब सरकारें दबे-छुपे तरीके से बंद दरवाजों के पीछे, तयशुदा लोगों के साथ मिलकर बिना व्यापक जन-भागीदारी व बहस के इस तरह के परिवर्तन करती हैं तो संदेह होता है कि निश्चित ही वहां कुछ ऐसा होने जा रहा होता है जिसे वो सबके सामने नहीं लाना चाहते क्योंकि वे शिक्षा को एक राजनैतिक औजार के रूप में इस्तेमाल कर न सिर्फ राजनैतिक फायदा उठाने की कोशिश कर रही होती हैं बल्कि हमारी जिन्दगियों को दूर तक प्रभावित भी कर रही होती हैं। जबकि शिक्षा का सत्ताधारी लोगों द्वारा खुद के फायदे के लिए औजार के रूप में इस्तेमाल किसी भी समाज के लोगों को बेहतर जिंदगी मुहैया नहीं करा सकता।

पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा का सबसे बेहतर तरीका होता है कि उन पुस्तकों को उस राष्ट्र के संवैधानिक मूल्यों व शिक्षा के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर परखा जाए। मेरी भी मंशा ऐसा ही करने की थी लेकिन जब इन पुस्तकों को देखा तो न सिर्फ निराशा हुई बल्कि अफसोस और झल्लाहट भी हुई कि राजस्थान जैसे देश के सबसे बड़े राज्य में अचानक मेधा का अकाल कैसे हो गया! ये किताबें न सिर्फ शिक्षा के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर बेहद खराब और फूहड़ हैं बल्कि सामाजिक सिद्धांतों के नजरिए से बेहद खतरनाक और अन्यायपूर्ण भी हैं।

पुस्तकों में सामाजिक विविधता और समावेशिता

किसी भी पाठ्यपुस्तक को एक अच्छी पुस्तक होने के लिए जरूरी है कि उनमें समाज के हर हिस्से का प्रतिनिधित्व हो, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग के आधार पर पुस्तक भेद-भाव न करे। प्रतिनिधित्व से आशय है कि पुस्तक के निर्माण करने वाले समूह से लेकर पुस्तक में आए पात्र व उनकी संस्कृती (रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, कला, इत्यादि) को पुस्तक मे सम्मानजनक जगह मिले। ऐसा करने की कई वजहों में से बेहद खास है- बच्चों के सीखने के लिए जरूरी है कि उन्हें पुस्तक में उनकी जिंदगी व आस-पास की झलक मिले, वे अपनी जिंदगी से उसका जुड़ाव महसूस कर पाएं। उन्हें लगे कि अरे ये तो मेरे ही या मेरे आस-पास के बारे में है।

पुस्तकों (कक्षा 3 से 5) को देखने पर पहला झटका लगता है जब पुस्तक निर्माण समिति के 26 सदस्यों में से एक भी नाम मुस्लिम, सिख या ईसाई समुदाय से नहीं है। इसी तरह जब कक्षा तीन की पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक को देखा तो उसमें कुल 20 पाठ हैं और इन बीस पाठों में कुल 46 पात्रों या व्यक्तियों के नाम आए हैं जिनमें सिर्फ एक नाम (गुरमीत) को छोड दें तो कोई भी नाम इन तीन समुदायों से नहीं है। इन सारे पाठों में कई बार रिश्तों का जिक्र है जिनमें एक बार भी अब्बू, अम्मी, आपा, बीजी, जैसे सम्बोधन नहीं हैं। इसे देखकर आसानी से कहा जा सकता है कि एक लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था में सत्ता किन के हाथों में हैं, किस वर्ग विशेष के लोग उस सत्ता का दुरुपयोग करते हुए इन किताबों में किस वर्ग के प्रतिनिधित्व को वर्चस्व दिला रहे हैं। जब ये किताबें समाज के अन्य वर्गों के पात्रों के नामों को जगह नहीं दे सकतीं तो इनसे उनकी संस्कृती के प्रतिनिधित्व की उम्मीद तो कतई नहीं की जा सकती। और तो और किताबें इस वर्ग विशेष के वर्चस्व के लिए बेहद उतावली व बैचेन दिखाई देतीं हैं। इसकी बानगी इसी कक्षा तीन की पुस्तक के दूसरे ही पाठ में देखी जा सकती जहां मित्रता नामक पाठ में तीन उद्धरण दिए गए हैं जिसमें पहला किस्सा 'कृष्ण' और 'सुदामा' का है, दूसरा एक कहानी है जो एक बच्चे जिसका नाम 'गोपाल' और 'गाय' के बारे में है और तीसरा उद्धरण 'राणा प्रताप' व 'स्वामिभक्त चेतक घोड़े' का है। इस पाठ में जाति, धर्म, लिंग, आयु, वर्ग और नस्ल के भेद से परे मित्रता के लिए आवश्यक इंसानी बराबरी और वैचारिक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान के बारे में एक शब्द भी न कह कर ये तीन उद्धरण रख दिए गए हैं। इन किताबों (कक्षा 3 से 5) में गाय एक मात्र ऐसा जीव है जिसके सबसे ज्यादा चित्र हैं व उसके नाम का सबसे अधिक बार जिक्र आया है। इस तरह के तमाम उद्धरणों व प्रतीकों का वजह बेवजह खूब इस्तेमाल किया गया है जिन्हें देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि किसी एक वर्ग विशेष से जुड़े इन प्रतीकों (कृष्ण, गाय, राणाप्रताप, मंदिर में हाथ जोड़ना, 'कमल पर स्वस्वती विराजती है', 'महात्मा जी के आगे सब नतमस्तक हो गए', पतंजली ऋषी का अष्टांग योग, ऋषी चरक, ऋषी सुश्रुत, ऋषी कणाद, स्वामी विवेकानंद, वीर सावरकर, इत्यादि) के द्वारा लेखक क्या कहना चाहते हैं। इस सबके लिए किताबों मे एक उतावलापन भी साफ-साफ दिखाई देता है।

किताब में भोजन की विविधता को लेकर एक पाठ है जो कि एनसीईआरटी की पुस्तकों के पाठ से नकल करके बनाया गया है। इस नकल करने में उस पाठ की पूरी आत्मा को न सिर्फ मार दिया गया है बल्कि खाने को लेकर विविधता की समझ और उसके प्रति स्वीकार्यता का सत्यानाश करके रख दिया है। कक्षा तीन, चार व पांच में आए पाठों को देखने से लगता है कि पुस्तक मांसाहार के विचार भर से भयभीत है। इसलिए न तो उसके चित्र हैं, न तालिकाओं में कोई जगह। और तो और रही-सही कसर यह कह कर पूरी कर दी है, ''हमें अपने भोजन में विभिन्न फल, दालें, सब्जियां, दूध आदि का उपयोग करना चाहिए''(कक्षा-3 पृष्ठ 62) तथा कक्षा पांच में मांसाहार को सीमित खाने की शिफारिश की गई है।

लेखकों के नाम तथा पुस्तकों में आए पात्रों के नाम, कहानियां व उद्धरण और शाकाहारी खाने का आग्रह! क्या आपको इनमें कोई संबंध दिखाई देता है? क्या अब समझ आया 'बदली हुई परिस्थितियां' और 'विकास के मायने'???

यहां ऊपर उठाए गए सवालों में से एक सवाल का कुछ हद तक जवाब मिलता है कि ये किताबें किसके द्वारा और किसके विकास को केंद्र में रखकर तैयार की गईं हैं और इनका इरादा क्या है। साथ ही एक युग की बात कहने वाले व्यक्ति की राय भी ठीक प्रतीत होती दिखाई दे रही है।

लैंगिक समता बनाम पुरुष वर्चस्व

इन किताबों की शुरुआत में 'शिक्षकों के लिए' के अंतर्गत जेंडर संवेदनशीलता को ध्यान में रखने की बात की गई है। लेकिन इन किताबों को देखने पर इनकी पुरुषवादी मानसिकता की बैचेनी व छटपटाहट साफ दिखाई देने लगती है। किताबों में जेंडर संवेदनशीलता के मुद्दे को बहुत ही भोंडे, हास्यास्पद व स्त्रीविरोधी तरीके से रखा गया है। देखने पर लगता है जैसे कि लेखकों को कहा गया हो कि पुस्तकों में महिलाओं को स्थान देना है, इसलिए स्थान तो दे दिया पर लेखक व लेखिकाओं की पुरुषवादी मानसिकता, नजरिया और लैंगिक समझ का दिवालियापन इनमें साफतौर पर दिखाई देता है, और अंततः किताबें पुरुषत्ववादी नजरिए को ही पुनर्पोषित व पुनर्बलित कर रहीं हैं। पुस्तको में महिलाओं का चित्रण कपड़े ढोते हुए, बर्तन साफ करते हुए, खाना पकाते हुए, सिर पर पानी भरकर लाते हुए, कुएं और हेंडपंप से पानी भरते हुए, नर्स, मजदूरी करने जैसे कामों में किया गया है। जबकी खेल के चित्रों, तकनीकी कामों से महिलाएं नदारद हैं। हां सिर्फ प्रतिनिधित्व को दिखाने भर के लिए संतोष यादव, कल्पना चावला आदि को किताब में जगह दी गई है। जहां-जहां पारिवारिक कामों का विवरण आया है वहां-वहां खाना बनाना व परोसना जैसे काम में महिलाओं का ही विवरण है। जो कि पारंपरिक पुरुष वर्चस्ववादी नजरिए को ही पोषित करते हैं और महिलाओं को पुरुष की अधीनस्थ के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। पुस्तकों का पुरुषत्व तब और भी साफ नजर आता है जब वे खुद हास्यास्पद, बेशर्मी से शिक्षक निर्देश में कहतीं हैं ''... सामूहिक अवसरों पर व होटल, रेस्तरां में खाना पकाने का कार्य पुरुषों द्वारा भी किया जाता है, इसको समझाते हुए छात्रों में जेंडर संवेदनशीलता विकसित करें'' (कक्षा-3, पृ. 71)। इसी तरह एक नारे में कहती हैं ''एक बेटी पढ़ेगी, सात पीढ़ी तरेगी'' (कक्षा-4, पृ. 9)। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि लेखकों का समूह जेंडर के विषय को प्रभुत्व व अधीनस्थ (authority and subordination) के नजरिए से देखने में या तो अक्षम है या फिर उनके अंदर बैठा पुरुषत्व यही करना व कहना चाहता है। मुझे दूसरी बात ज्यादा ठीक लगती है। जहां न सिर्फ स्त्री को पुरुष वर्चस्व के नजरिए देखा जा रहा है बल्कि उसी को और मजबूत भी किया जा रहा है कि एक महिला की भूमिका बच्चे पैदा करने, उनका लालन पालन करने, घर की देखभाल व चौका-बासन करने की है।

अब तक की बात के आधार पर देखें तो ये पुस्तकें हिन्दुवादी और पुरुषवादी नजरिए से इसी विचारधारा को पुनर्बलित व पुनर्पोषित करने के मकसद से तैयार की गईं हैं। तो यहां यह और भी साफ हो जाता है कि इन पुस्तकों में विकास के मायने क्या हैं तथा इनमें किसके और कैसे विकास की अपेक्षा की गई है। यह और भी अफसोसजनक हो जाता है जब ये किताबें इनके निर्माण में यूनिसेफ जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था के तकनीकी सहयोग का हवाला देतीं हैं जो कि सारी दुनिया में समावेशी व समान शिक्षा की वकालत करने का दावा करती है।

सीखना बनाम सूचना

'प्राक्कथन' मे कहा गया है, *''वर्तमान में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 तथा निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के द्वारा यह स्पष्ट है कि समस्त शिक्षण क्रियाओं में 'विद्यार्थी' केन्द्र में है। हमारी सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि विद्यार्थी स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे। उसके सीखने की प्रक्रिया को ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्रता दी जाए, इसके लिए शिक्षक एक सहयोगी के रूप में कार्य करे। पाठ्यचर्या को सही रूप में पहुंचाने के लिए पाठ्यपुस्तक महत्वपूर्ण साधन है।''* (पर्यावरण अध्ययन, प्राक्कथन, पृ. iii) इसके अनुसार विद्यार्थी केंद्र में है, किन्तु ऊपर जो कहा गया है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि किस वर्ग विशेष

के विद्यार्थी को केंद्र मे रखा गया है और किस वर्ग के बच्चों के अनुभवों को स्थान दिया गया है। यह भी कहा गया है कि पाठ्यपुस्तक महत्वपूर्ण साधन हैं और शिक्षक सिर्फ एक सहयोगी। जबकि 'शिक्षकों के लिए' शीर्षक के अंतर्गत कहा गया है, ''पुस्तक साधन मात्र है, अतः शिक्षक पर्यावरण अध्ययन हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम को आधार बनाकर कक्षा में गतिविधियों को आयोजित करें'' (पर्यावरण अध्ययन, शिक्षकों के लिए, पृ. vi)। जो पुस्तक 'प्राक्कथन' व 'शिक्षकों के लिए' जैसे महत्वपूर्ण कथनों मे वैचारिक संगतता नहीं रख सकती, जो यहीं पर विरोधाभासी हो जाती है। तो आप खुद अंदाजा लगा सकते हैं कि उस पुस्तक की विषयवस्तु व उसके शिक्षण शास्त्रीय क्रम व ढांचे का क्या हाल होगा।

पुस्तक के पाठों का ढांचा कुछ इस तरह है जिसमें पाठ को 'सोचिए और लिखिए', 'सोचिए और बताइए', 'सोचिए और चर्चा कीजिए', 'तालिका देखकर बताइए', 'इसे भी करिए', 'हमने सीखा', आदि शीर्षक व उप-शीर्षकों में बांटा गया है। अधिकांश पाठों की शुरुआत बच्चों के वास्तविक अनुभवों के बजाय एक मनगढ़ंत, उबाऊ और बोझिल कहानी या विवरण से होती है। पाठों के बीच-बीच में जहां बच्चे को बताने या लिखने को कहा गया है वहां बहुत सारी जगहों पर बच्चे के लिए लिखने की कोई जगह ही नहीं दी गई। तो क्या सचमुच किताब बच्चों के अनुभवों को शामिल कर उन्हें ज्ञान निर्माण प्रक्रिया मे भागीदार बनाने की गंभीर कोशिश कर रही है? बिलकुल नहीं! चूंकि ज्ञान निर्माण में शामिल करने व सक्षम बनाने के लिए और शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर बनी कुछ अच्छी किताबों मे तालिकाएं होती है और कुछ इसी तरह के शीर्षक व उप-शीर्षक होते हैं जहां बच्चों के अपने अनुभव संसार को शामिल किया जाता है। इसलिए इन किताबों में भी इसी तरह के शीर्षक व उप-शीर्षक रख तो दिए हैं पर वे बहुत ही अव्यवस्थित हैं, उनमें विषय विशेष की ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया की क्रमबद्धता और संगतता दिखाई नहीं देती। ये सब बहुत ही बेतरतीब तरीके से बस रखे भर गए हैं। किताबें सीखने में आत्मनिर्भरता लाने की बजाए सूचनाओं व आग्रहों से भरी पड़ी हैं। सिर्फ तालिकाएं और 'सोचिए और लिखिए' जैसे शीर्षक डाल देने भर से बच्चे उस किताब के केंद्र मे नहीं आते। उसके लिए विषयवस्तु को किताबों में उस विशेष ज्ञानानुशासन के अनुसंधान के तरीकों, कर्म व सत्यता की कसौटी के अनुसार बहुत ही व्यवस्थित व क्रमबद्ध तरीके से रखा जाता है। इन किताबों में सूचनाओं की बमबारी इस कदर होती है कि बच्चे तो बच्चे कई जगह तो शिक्षक भी उस बमबारी (शून्यवाद, माध्यमिक सिद्धान्त, वैशेषिक सूत्र, आदि) से घायल हो जाएं। ज्यादा बेहतर होगा कि इन किताबों को शिक्षाशास्त्रीय व सीखने के मनोविज्ञान के आधार पर देखा ही न जाए, क्योंकि ऐसा कुछ इनमें है ही नहीं। किताबों में लेखकों के ज्ञान के उबाल का असर बड़ा साफ दिखता है। किसी भी किताब में बच्चों को पदार्थों के रासायनिक नामों के प्रतीकों तक से परिचित नहीं कराया गया पर अचानक विज्ञान की किताबों में रासायनिक समीकरण आ धमकते हैं। अब भला कोई इनके बारे में क्या कहे!

लेकिन जो इन किताबों में है उसे देखने की कोशिश करते हैं यानी- सूचनाएं। सूचनाएं अर्थात शब्द, और शब्द मायने आवधारणा। यदि सूचना को ही सीखना मान लें तो इन किताबों से जो सिखाने की कोशिश की गई है उसके कुछ उदाहरणों के माध्यम से यह देखते हैं कि वे क्या सिखाती प्रतीत हो रही हैं। और समाज में किस तरह के विकास का सपना संजोए हुए हैं।

किताब बताती है कि ज्यादा गर्मी से ज्यादा वाष्पीकरण होता है और कहती है, ''वाष्पीकरण के कारण ही कपड़े सूखते हैं'' (कक्षा-4; पृ.49)। वाष्पीकरण के दो प्रकार होते हैं, एक तो तरल पदार्थ के उबलने पर ताप क्वथनांक बिन्दु (100 डिग्री) पर पहुंचता है तथा दूसरा जो कि क्वथनांक से कम ताप पर होता है। दूसरे में ताप एक मात्र कारण नहीं होता, उसके साथ और भी निर्धारक तत्व होते हैं। किताब इसे भ्रामक तरीके से प्रस्तुत कर रही है। लेखक महोदय शायद भूल रहे हैं कि हवा में आर्द्रता की मात्रा और उसकी आर्द्रता ग्रहण करने की सामर्थ्य भी कोई चीज होती है। यही वजह है कि सर्दियों में तापमान कम होने (15 से 20 डिग्री) के बावजूद कपड़े सूख जाते हैं जबकि बारिश के मौसम में तापमान अधिक होने (25 से 30 डिग्री) पर भी कपड़ों को सूखने में ज्यादा वक्त लगता है।

(कक्षा-5, पाठ-10) किताब कहती है कि पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है, पानी के बहने की दिशा ऊपर से नीचे ही नहीं होती वह तो किसी भी दिशा मे बह सकता है नीचे से ऊपर भी जा सकता है। उसका बहना ऊंचाई

से नहीं बल्कि दाब (बल) से निर्धारित होता है। बहने की दिशा हमेशा अधिक दाब से कम दाब की ओर होती है। अब चाहे यह दाब (बल) गुरुत्व बल के कारण लगे या फिर बिजली की मोटर से या फिर हेंड पंप से। जबकि इन्हीं किताबों मे कहा गया है कि वायु हमेशा अधिक दबाव से कम दबाव की ओर बहती है!

विज्ञान की कक्षा 6 की किताब में वस्तुओं को पदार्थ कहा जा रहा है- हमारे आस-पास की अनेक वस्तुएं जिनमें भार होता है (क्या कोई ऐसी भी वस्तु होती है जिसमें भार नहीं होता?) और स्थान घेरेती हैं उन्हें पदार्थ कहते हैं (पृ.37)। यह बात तो समझ आती है की वस्तुएं पदार्थ या पदार्थों से मिलकर बनी होती हैं पर यहां तो वस्तु ही पदार्थ है!

इसी किताब में बताया गया है कि लकड़ी, पैड-पौधे के तिनके, पत्तियां जैसी ''हल्की'' वस्तुएं पानी में तैरतीं हैं (कक्षा-6, पृ. 25)। यहां सवाल हल्की या भारी होने का नहीं घनत्त्व का है। सुईं, आलपिन तो हल्की होती हैं पर डूबती हैं, जबकि जहाज बहुत भारी होता है पर तैरता है। इसी पाठ में बताया गया है 'रेत व रुई को डिब्बे में भरो, कौन भारी है? रेत, रुई से भारी है। इसलिए रेत का द्रव्यमान अधिक है। अतः हम कहते हैं रेत का घनत्व अधिक है (कक्षा-6, पृ. 25)'। इसके अनुसार भार=द्रव्यमान=घनत्व अर्थात भार=घनत्व। यहां बहुत ही भ्रामक तरीके से घनत्व को सीधे-सीधे भार से जोड़ दिया गया है। अब यदि कोई वस्तु भारहीन अवस्था में है तो क्या उसमें घनत्व नहीं होगा। या फिर, हम जानते हैं कि जब विषवुत रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हैं तो वस्तुओं के भार मे कमी आती है। तो क्या विषवुत रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर वस्तुओं का घनत्व भी कम होता है?

चित्र-2

चित्र-3

विज्ञान की ही किताब में बल के पाठ में एक शीर्षक है- 'बल की अवधारणा'। इस पाठ में बजाय यह बताने के कि बल क्या होता है, यह बताया जा रहा है कि बल से ये होता है, बल से वह होता है लेकिन पूरे पाठ मे कहीं भी यह नहीं बताया जाता कि बल क्या है (कक्षा-6, पृ. 103)। यदि यह बताना बस की बात नहीं थी तो फिर शीर्षक, 'बल की अवधारणा' रखने की क्या जरूरत थी, कुछ और ही रख लिया जाता। इससे इतना तो स्पष्ट है कि लेखक के मन में अवधारणा की अवधारणा क्या रही होगी! आगे हद तो तब होती है जब पाठ यह बताता है कि बल वस्तु की स्थिति में परिवर्तन कर सकता है अर्थात बल लगाने पर स्थिर वस्तु गतिशील हो सकती है- (कक्षा-6, पृ. 104)। अरे जनाब, गतिमान होने के लिए बल की जरूरत होती है यह बात तो सही है लेकिन बल से चीजें गतिमान होती हैं यह ठीक नहीं। जरा किसी दीवार, पहाड़ या जमीन पर जी भर के बल लगा कर देखो! अंदाजा हो जाएगा कि बल तो लगा, पर इनको गतिमान कर पाए या नहीं। पृथ्वी की सतह पर रखी हर चीज पर गुरुत्व बल हर समय लग रहा होता है, पर वे सारी चीजें गतिशील अवस्था में नहीं होतीं।

विज्ञान की किताब के एक अन्य पाठ में गति व चाल को एक दूसरे का पर्यायवाची बना दिया गया है- जब वस्तु की गति तीव्र होती है तो हम कहते हैं कि उसकी चाल अधिक है तथा जब वस्तु की गति धीमी होती है है तो हम कहते हैं कि उसकी चाल कम है- (कक्षा-7, पृ. 105) मनमर्जी से कहीं भी गति को चाल व चाल को गति लिखा गया है। पता ही नहीं चलता की कहां तो 'स्पीड' की बात हो रही है कहां 'मोशन' की। जबकि विज्ञान का हर विद्यार्थी जानता है कि इन दोनों में क्या अंतर होता है। इन दोनों अवधारणाओं का घालमेल लेखकों की समझ व मंशा को बताता है कि वे क्या कर रहे है।

सारी दुनिया जानती है कि गिलास और मोमबत्ती वाले प्रयोग से यह सिद्ध नहीं होता कि वायु में 21 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। मोमबत्ती के बुझने के बाद गिलास में पानी का चढ़ना और ज्यादा मोमबत्तियां जलाने पर ज्यादा पानी चढ़ना (50-60 प्रतिशत तक) बताता है कि इसकी मुख्य वजह हवा का ऊष्मीय प्रसार है। इसके बावजूद भी इस प्रयोग को विज्ञान की किताब में जगह मिली हुई है (कक्षा-6, पृ. 140)। जबकि अनेक पत्रिकाओं में इस प्रयोग के बारे में लिखा जा चुका है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं किताबों में, पर ये उदाहरण काफी हैं जो बताते है कि इन किताबों को कितने सक्षम व गंभीर लोगों ने तैयार किया होगा। क्या यह सब सिर्फ अज्ञानतावश हुआ है या जानबूझ कर? इससे इस बात का अंदाजा भी लगता है कि ये किताबें किस तरह के विकास के लिए तैयार की गई होंगी और उसके पीछे के मकसद क्या हैं?

'प्राक्कथन' में यह भी गया है, *''पाठ्यपुस्तक तैयार करने में यह ध्यान रखा गया है कि पाठ्यपुस्तक सुगम, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य एवं आकर्षक हों, जिससे विद्यार्थी सरल भाषा, विषयवस्तु, चित्र, विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात कर सके।''* पाठ्यपुस्तक में दिए गए चित्रों पर पर्सपेक्टिव, कैमरा एंगल, कलर पेलेट, बेलेन्स, प्रपोर्शन आदि को लेकर बात करना या कहना तो बहुत दूर की कौड़ी है। इन चित्रों को यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये चित्र बच्चों जैसे हैं, क्योंकि बच्चे इनसे कहीं बेहतर चित्र बनाते हैं। ये चित्र (देखें, चित्र-2, 3, 4, 5, 6 व 7) तो भद्दे, भोंडे, फूहड़ और खराब हैं। इससे बेहतर होता कि चित्रों की जगह खाली छोड दी जाती वहां बच्चे खुद बेहतर चित्र बना लेते। यह हाल तब है जब राजस्थान में एक से बढ़कर एक चित्रकार मौजूद हैं। इन्हें देखकर एक बार फिर से किताबों की गंभीरता का अंदाजा लगता है।

इसके अलावा एक और बात। हालांकि यह मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं पर यहां इसका जिक्र जरूरी है। अब तक मेरा मानना था कि शिक्षक व अधिकारियों की वर्तनी बहुत अच्छी होती है। क्योंकि जब भी कोई स्कूल जाता है तो बच्चों से भी और शिक्षकों से भी वर्तनी ही लिखवाकर देखा जाता है। लेकिन इन किताबों मे वर्तनी की गलतियों की भरमार है। यही तो एक चीज थी 'शुद्ध वर्तनी' जो इन्हें शायद अच्छे से आती थी, लेकिन ये किताबें यहां भी मात खा गईं।

शायद इस सबके बाद आपको अंदाजा लग गया होगा कि ये किताबें किस परिस्थिती के बदलने पर लिखी गईं हैं। इनमें विकास के मायने क्या हैं और किसके विकास की बात करती हैं तथा विकास की दिशा किस तरफ है। ◆

लेखक रिचय : टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशियल साइंस के विद्यार्थी हैं और पिछले दो दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। कई सरकारी व गैर सरकारी, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ शिक्षाक्रम व शिक्षण सामाग्री निर्माण, बाल-साहित्य निर्माण, शिक्षक शिक्षा व प्रशिक्षण, प्रकाशन, पुस्तक-समीक्षा, लेखन जैसे कार्य करते रहे हैं।

चित्र-4

चित्र-6

चित्र-5

चित्र-7

चित्र 4.6 सार्वजनिक स्थान पर सफाई करते हुए